



National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177

NJHSR 2016; 1(4): 08-09

© 2016 NJHSR

www.sanskritarticle.com

Received: 17-01-2016

Accepted: 18-01-2016

डॉ. आदित्य आंगिरस

Vishveshvaranand Vishwa
Bandhu Institute of Sanskrit and
Indological Studies
PanjabUniversity Hoshiarpur-
146001, Punjab.

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की सौन्दर्य चेतना

डॉ. आदित्य आंगिरस

विभिन्न देशों में कलाओं के संदर्भ में सौन्दर्य का अंकन करने की परम्परा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है एवं सामाजिक शास्त्र आदि के संदर्भ में यह दर्शन सबसे नवीन रूप में हमारे सामने आता है। यद्यपि संसार के प्रत्येक देश में सौन्दर्य विषयक विचार अपने अपने संदर्भ में अभिव्यक्त किये गये हैं किन्तु इसे एक नितान्त भिन्न विषय मान कर इसकी एक विषय के रूप में स्थापना का इतिहास लगभग २०० अथवा ३०० वर्ष पुराना है। यह बात तो निश्चित है कि १९वीं एवं २०वीं शताब्दी में इसका आकर्षण पूर्वी एवं पश्चिमी जगत में बढ़ने लगा जिसके फल स्वरूप इसकी दर्शन के रूप में स्थापना हुई है। इसके परिणामस्वरूप इस विषय में विभिन्न सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं का एक ऐसा जंगल सा खडा हो गया है जो बुद्धिगम्य तो हो जाता है परन्तु वह हृदयगम्य नहीं हो पाता है।

पश्चिम में यद्यपि लीबनिट्ज़ एवं बाऊमगार्टेन को इस शास्त्र का प्रवर्तका माना जा सकता है जिसके उपरान्त पश्चिमी सौन्दर्य दर्शन के आलोचकों की बाढ सी आ गई। वे सभी इसे संगीत के संदर्भ में "मन की स्वतः चालित संगणना मानते हैं" एवं इसकी लय एवं पूर्णता पर बल देते हैं। यह बात तो निश्चित है कि पश्चिमी दार्शनिक इसे इन्द्रियों द्वारा गृहीत विषय मानते हैं। उनका आग्रह है कि यही जो ऐन्द्रिक संवेदनाओं में बाधा डालती है वही असुन्दर है एवं कुरूप है। अतः प्रकृति का अनुकरण ही सौन्दर्य सृजन का माध्यम है। यह विचारधारा कुछ हड तक अरस्तू की विचारधारा के मत को भी प्रतिपादित करती है। यहां एक बात स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि जहां अरस्तू के सौन्दर्य बोध में अनुकरण का अर्थ कलात्मक पुनःसृजन निकाला जाता है वहीं दूसरी ओर बाऊमगार्टेन आदि इसे प्राकृतिक नियम नीति के अनुरूप देखने के पक्षपाती हैं। टालस्टाय इसे लोकमंगल के साथ जोड़ कर देखने के पक्षपाती हैं जब की क्रोचे इसे अन्तःप्रज्ञा के रूप में स्वीकार करते हैं जब कि प्लेटो प्लाटिनस कांट जैफ्रे आदि इसे अलौकिक मानते हैं और इसे ईश्वरीय अनुभूति मानते हैं। भारतीय दर्शन एवं साहित्य शास्त्र में भी हमें इसी प्रकार का मत द्वैध देखने को मिलता है। भरत मुनि, भामह, दण्डी और शंकुज जहां सौन्दर्य को विशुद्ध वस्तुनिष्ठ मानते हैं वहीं दूसरी ओर भट्टनायक, अभिनवगुप्त, विश्वनाथ आदि संस्कृत आचार्य इसे काव्य की आत्मा मानते हुए अनुभूति पक्ष पर जोर देते हैं। यदि हम इसे अधिक विस्तृत दृष्टि से देखें तो हम पाते हैं कि वैदिक काल में जहां ऋषि मुनि शुद्ध अध्यात्मवादी होने के कारण सौन्दर्य को अनुभूत करते दिखते हैं वहीं शैव एवं वैष्णव मत भी इन्हीं के अनुसार सौन्दर्य को आत्म का गुण मानता है। इस प्रकार यदि सोचा जाये तो एक तथ्य तो निश्चित रूप से हमारे सामने स्पष्ट होता है कि सौन्दर्य की अर्थवत्ता चित्त को आल्हादित करने में है क्योंकि प्रथमतः अखिल सृष्टि परम तत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है एवं आत्म का स्वभाव सत, चित्त, एवं आनन्दमय है। इस विचारधारा का प्रभाव व्यापक रूप से संस्कृत भाषा के साहित्य में देखा जा सकता है

क्योंकि आचार्य विश्वनाथ इसे साहित्य में वर्णित रस मान कर "ब्रह्मानन्द स्वाद सहोदरः" कह कर अपनी अभिव्यक्ति प्रकट करते हैं। इसके अनुसार काव्य का अभिप्राय केवल एवं केवल आनन्दानुभूति है। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है कि आध्यात्मिक सौन्दर्यानुभूति एवं एवं रसवादी सौन्दर्यानुभूति भावसौन्दर्य पर आश्रित है। यदि उपरोक्त वक्तव्य को ध्यान से देखा जाये तो हम इस तथ्य पर निश्चित रूप से पहुंचते हैं समस्त मानव जगत सौन्दर्य के विषय में विभक्त है प्रथमतः वे जो सौन्दर्य को विशुद्ध रूप से वस्तुनिष्ठ मानते हैं और द्वितीय वे जो सौन्दर्य को आत्म का गुण मानते हैं। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सौन्दर्य के साक्षात्कार के लिये दोनों की आवश्यकता बराबर बनी रहती है। विषयोपभोग करने वाला एवं विषय में जब तक तालमेल अथवा संगति नहीं बैठती तब तक सौन्दर्य की प्रतीति असंभव है। साफ़तौर पर इस विषय में यदि कहा जाये तो यह एक उभयपदी प्रयोग है। इस संदर्भ में माघ की उक्ति दृष्टव्य है "क्षणे क्षणे यन्वतामुपैति तदैव रूपं रमणीयता" अर्थात् जहां मोक्ता एवं भोक्तृत्व का सामंजस्य ठीक से बैठता है या इसे दूसरे शब्दों में कहें तो भावक एवं भावित के मध्य जो एक सामंजस्य बैठता है एवं जिससे उसे आनन्द की प्राप्ति होती है वस्तुतः वही सौन्दर्य है। यहां यह कहना आवश्यक है कि हिन्दी साहित्य में सौन्दर्य विवेचन की संस्कृत साहित्य की सौन्दर्य चेतना विवेचन से नितान्त भिन्न नहीं है। इस का स्पष्ट कारण यह है कि हिन्दी भाषा की पृष्ठ भूमि पर यदि हम दृष्टिपात करें तो यह बात साफ़तौर पर हमारे सामने आती है कि हिन्दी का उदभव एवं विकास तब हुआ जब मध्य ऐशियाई देशों ने भारत पर आक्रमण किया। पालि प्राकृत एवं

Correspondence:**डॉ. आदित्य आंगिरस**

Vishveshvaranand Vishwa
Bandhu Institute of Sanskrit and
Indological Studies
PanjabUniversity Hoshiarpur-
146001, Punjab.

अपभ्रंश पर अरबी फ़ारसी आदि मध्य एशियाई देशों का जो प्रभाव पड़ा वह निश्चित रूप से भारतीय जनमानस में परिवर्तन का हेतु बना। यही प्रभाव हिन्दी ने अंग्रेजों से भी प्राप्त किया। फ़लतः हिन्दी साहित्य में जहाँ भरत मुनि, भामह, आदि आलोचकों की भी चर्चा हुई वहीं पश्चिमी शैली में प्रसिद्ध ईलियट वर्डस्वर्थ, क्रोचे का भी चिन्तन मनन का भी प्रभाव हमें स्पष्ट रूप से हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। यहाँ यह बात भी महत्वपूर्ण है कि हिन्दी साहित्य के रीति काल में कतिपय ग्रन्थों के माध्यम से सौन्दर्य की चर्चा नायक नायिका भेद के माध्यम से अवश्य हुई है परन्तु उस में नितान्त ऐन्द्रिय बोध अधिक होने के कारण त्याज्य माना जा सकता है।

इन सभी उपरोक्त परिस्थितियों ने आधुनिक लेखन को जितना आज के समय में प्रभावित किया है उतना ही आचार्य हजारी द्विवेदी के व्यक्तित्व को भी प्रभावित किया है। आचार्य द्विवेदी का उदय हिन्दी साहित्य में एक ऐसे काल में हुआ है जब भारत राजनीतिक पराधीनता के दौर में से गुज़र रहा था एवं लिक मानस पर अरबी फ़ारसी के साथ साथ संस्कृत एवं अंग्रेज़ी का भी प्रभाव होने के साथ साथ फ्रेंच, डच एवं पुर्तगाली प्रभाव भी भारतीय संस्कृति पर डाला जा रहा था ऐसी स्थिति में प्रत्येक साहित्यकार की सोच पर पश्चिमी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। महामना रवीन्द्र एवं आचार्य क्षितिमोहन सेन की सोच ने जहाँ आचार्य द्विवेदी के साहित्य बोध को प्रभावित किया वहीं उनके पारिवारिक संस्कार भी उनके व्यक्तित्व पर उतने ही हावी रहे हैं। फ़लतः जहाँ एक ओर आधुनिक मानवतावाद की बात करते हैं तो वहाँ वे भारतीय संस्कृति के विषय में चिन्तन परम्परा को त्याज्य नहीं समझते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी यद्यपि हिन्दी साहित्य क्षेत्र में मानवतावादी दृष्टिकोण के लिये प्रसिद्ध है परन्तु वे हिन्दी साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति की बात करना नहीं भूलते हैं। उनका यह भारतीय संस्कृति विषयक बोध भारतीय संस्कृति को नवीन धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। यह बात तो निश्चित है कि आचार्य द्विवेदी अपने साहित्य के माध्यम से जहाँ मानव के प्रति निष्ठा, धैर्य एवं प्रेम की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर भारतीय सौन्दर्योपासना की भी अपने साहित्य के माध्यम से बात में करते हैं। इस शोध पत्र के माध्यम से आचार्य द्विवेदी का सौन्दर्य के दृष्टि को स्पष्ट करने का एक लघु प्रयास किया गया है।

यह बात तो निश्चित है कि आचार्य द्विवेदी की सौन्दर्य-विषयक अवधारणा का मूल स्रोत कालिदास का समस्त साहित्य है परन्तु फिर भी वे सौन्दर्य विषयक उनकी अपनी अवधारणा का एक स्पष्ट स्वरूप हमें अशोक के फूल में दृश्यमान होता है। वे सौन्दर्य को एक ऐसा तत्त्व मानते हैं जो मनुष्य की जीवनी शक्ति के अनुकूल है। अपने इस वक्तव्य को अधिक स्पष्ट करते हुए सौन्दर्य को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हैं एवं वे भाव सौन्दर्य को प्राथमिकता देते हैं। इस का स्पष्ट उदाहरण हमें उनकी पुस्तक आलोक पर्व के "रूप और सौन्दर्य के मर्मज्ञ गायक कालिदास" में वर्णित अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम खण्ड के १९वें श्लोक के माध्यम से स्पष्ट होता है जो शकुन्तला के रूप वर्णन से संबंधित है। इसी प्रकार वे अपने निबंध में कालिदास के कुमार संभव के माध्यम से पार्वती के संबंध में भी विचार करते हैं। वे रूपासक्ति को बलात्कार की संज्ञा देते हैं एवं कालिदास के कुमारसंभव का अनुसरण करते हुए यह मानते हैं कि सही लावण्य पाप की वृत्ति को अग्रसर नहीं करता है। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना समीचीन हो जाता है कि उनकी सौन्दर्य चेतना पश्चिमी बौद्धिकतावाद अथवा अति बौद्धिकतावाद के समानतर नहीं है जो शुष्क तार्किकता से अनुप्राणित है जिसे हम विश्व साहित्य के क्षेत्र में स्टक्चरलिज्म अथवा पोस्ट स्टक्चरलिज्म के नाम से जानते हैं। वस्तुतः उनकी चेतना का आधारभूत भारत की वह रस परम्परा रही है जिसे

आचार्य विश्वनाथ ने अपने काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ के माध्यम से "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" कही है। आचार्य द्विवेदी अपने समस्त काव्य के द्वारा "रसो वै सः" का अर्थ भी इन्हीं संदर्भों में स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। आचार्य द्विवेदी के अनुसार सौन्दर्य कोरा बुद्धि अथवा ज्ञान का विषय नहीं है अपितु वह रस की अजस्र धारा है जो हृदय में हमेशा ही निवसित है। कहने का अर्थ है कि पश्चिम के अधिकतर विद्वानों ने सौन्दर्य को जहाँ अंग सौष्टव के साथ जोड़ा है वहीं भारतीय परम्परा उसे एक निरन्तर प्रवहमान धारा के समान समझ कर हृदय से जोड़ती है।

आचार्य द्विवेदी अपने समस्त साहित्य विशेषकर निबंधों में एवं उपन्यासों में कहीं न कहीं लोक जीवन के माध्यम से प्राचीन भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की बात करते हुए उत्सवों के विषय में अक्सर बात करते हैं जिनमें मदनोत्सव एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह तो स्पष्ट है कि मानव के पास जहाँ सोचने एवं समझने की शक्ति है वहीं दूसरी ओर उसके पास अनुभव करने की भी शक्ति है। वास्तव में यही शक्ति मनुष्य को पशु से अलग करती है। इस बात को यदि कालिदास एवं आचार्य द्विवेदी के संदर्भों में समझा जाये तो सौन्दर्य वस्तुतः एक ऐसा तत्त्व है जो जीवनी शक्ति के अनुकूल होते हुए मनुष्य मन को न केवल प्रभावित करता है अपितु उसके हृदय को स्पन्दित करता है जो कि सौन्दर्य का एक गुण विशेष है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि काव्य में अभी तक जो भी प्रतिभा के अर्थ में कहा गया है वह सारा कुछ इन्हीं संदर्भों में व्याख्यात होता है।